7 जून, 2010 को 1500-1600 बजे विदेश मंत्रालय, प्राग में प्राग सिक्योरिटी स्टडीज़ इन्स्टीटट्यूट में भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री मो. हामिद अंसारी का अभिभाषण

21वीं सदी में वैश्विक शासन-व्यवस्था के कुछ पहलू

मैं स्वयं के एक अत्यंत प्राचीन नगर का निवासी होने का दावा करता हूं। यह नगर एक नदी के किनारे स्थित एक ही भूखंड पर क्रमिक रूप से बनाए गए आठ नगरों में से एक है। अतः, मैं इस अत्यंत प्राचीन नगरी से मोहित हुए बिना नहीं रह सकता। पौराणिक कथानुसार प्राग की संस्थापक देवी ने ऐसे विशाल नगर की कल्पना की थी जिसका वैभव तारों तक जाएगा। मैं जो सुंदरता और वास्तुशास्त्रीय भव्यता यहां देख रहा हूं, वह इस भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करती है।

भूगोल और इतिहास ने प्राग को एक केन्द्रीय स्थान प्रदान किया है जो दिख रहा है। इसने सदियों से मध्य यूरोप में सैद्धांतिक और राजनीतिक संघर्षों को देखा है और यह आज एक नए यूरोप के निर्माण में सक्रिय भागीदार है।

इन सभी कारणों से मुझे आज यहां प्राग सिक्योरिटी स्टडीज़ इन्स्टीटट्यूट में मौजूद होने पर अत्यंत हर्ष हो रहा है। नीतिगत वाद-विवादों में योगदान करने के संबंध में अतिप्रतिष्ठित होने के कारण यह इन्स्टीटट्यूट आने वाले कल की दुनिया के लिए खुले तौर पर चिंतन करने और नीतिगत विकल्पों को तलाशने के लिए एक उपयुक्त स्थान बन गया है। मैं संस्थान को

धन्यवाद करता हूं कि उसने आज इस विशिष्ट जन-समूह को संबोधित करने के लिए मुझे आमंत्रित किया।

देवियो और सज्जनो,

हमारा युग राजनीतिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकीय बदलावों का महान युग है। इंसान को, यद्यपि असमान मात्रा में, इससे लाभ ही हुआ है। कुछ लोग इतनी संपन्नता और समृद्धि के साथ जीवन जी रहे हैं जो इतिहास में देखने को नहीं मिलता, जबकि अन्य लोग कम भाग्यशाली हैं। लोगों, राष्ट्रों और समाजों के बीच असमानता के स्तर पहले से कहीं अधिक ज्यादा हैं।

बदलाव का असर बहुत व्यापक है। अवधारणाएं, मूल्य और प्रणालियां परिवर्तन के दौर में हैं। राज्य संप्रभुता की वेस्टफैलियन व्यवस्था की पवित्रता पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं और संव्यवहारों ने बुरा असर डाला है। वैश्वीकरण ने इसे 'बाजार राज्य', जो कि इतिहासकार फिलिप बॉबिट द्वारा दी गई संज्ञा है, के निहितार्थों द्वारा और अधिक त्वरित बनाया है; प्रौद्योगिकी भी इसमें जुड़ गई है। तथापि, हमें स्पष्ट स्थिति नहीं प्राप्त हो रही है; समाजशास्त्री एंथोनी गिड्डेन्स ने वर्तमान समय के विश्व को "पेचीदा, विचित्र, दीर्घवृत्ताकार" बताया है जिसमें 'हम उन शक्तियों पर, जिन्हें हमने उत्पन्न किया है, पूर्ण नियंत्रण रखने से बहुत दूर हैं।'यह स्पष्ट है कि हमें निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए एक नई वैश्विक सहमति तथा एक नए प्रतिमान की आवश्यकता है।

कई श्रोताओं को यह याद होगा कि १९९२ में वैक्लव हैवेल ने आधुनिकता को पुनर्परिभाषित किए जाने का आह्वान किया था। उन्होंने कहा, 'विश्व के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण में पूर्णरूपेण परिवर्तन किया जाना होगा'। फिर उन्होंने इस संकल्पना का और वर्णन किया:

यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमें निज भावना के दायरे से ऐसी शक्तियों का बहिर्गमन करना होगा जो विश्व के स्वाभाविक, अद्‌भुत व अनोखे अनुभव, न्याय की मूल भावना, चीजों को जैसा दूसरे देखते हैं, वैसे ही देखने की योग्यता, आध्यात्मिक उत्तरदायित्व की भावना, आद्यप्ररूपीय बुद्धिमत्ता, अच्छी अभिरूचि, साहस, दया और उपाय विशेष के महत्व में आस्था के रूप में मुक्ति का सार्वभौमिक आधार नहीं बनना चाहती हैं। ऐसी शक्तियों को पुनःस्थापित किया जाना होगा।

मैं यह बात स्वीकार करता हूं कि ऐसे नजरिए को पूरी तरह लागू करना पूर्णतः सहज नहीं हो सकेगा। तो भी, आज हमारे पास अधिकांश मानवता की आर्थिक व राजनीतिक मुक्ति के लिए वस्तुपरक दशाएं विद्यमान हैं, क्योंकि प्रौद्योगिकी तथा राजनीतिक विकास ने विभिन्न राष्ट्रों के लोगों, विचारों, वस्तुओं व सेवाओं के बीच संबंध, संचलन व परिचालन के तंत्रों में कई गुणा वृद्धि कर दी है।

हम इस युग की आवश्यकताओं हेतु उपयुक्त सामाजिक व्यवहार के मापदंडों के अनुपालन का सुझाव दिए जाने के लिए, अरस्तु की इस उक्ति का स्मरण करते हुए कि नैतिक गुण प्रकृति से उत्पन्न नहीं होता और इसका ग्रहण आदत द्वारा करना होगा, पहले से भी अधिक बेहतर स्थिति में हैं। परिवर्तन के लिए इस संभावना को वास्तविकता में तब्दील करने से राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शासन की सबसे बड़ी चुनौती पैदा हो जाती है।

देवियो और सज्जनो,

सभ्यता के आरंभ से लेकर अब तक शासन वाद-विवाद का विषय रहा है। यूनानी दार्शनिकों ने इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया। ईसा पूर्व चौथी

शताब्दी में, भारतीय कूटनीतिज्ञ एवं प्रशासक कौटिल्य ने कहा था कि शासन का उद्देश्य राज्य की प्रजा का "सुख और कल्याण" हैः 'प्रजा के सुख में ही उसका सुख है; और उसके कल्याण में उसका कल्याण है'। ११वीं शताब्दी के एक मध्ययुगीन विद्वान ने यह लिखा कि राजा का ईश्वरीय कार्य "भ्रष्टाचार, भ्रम और मतभेद के द्वार बंद करना" है ताकि जनता निरन्तर सुरक्षित जीवन जी सके।

वैश्विक शासन को अब वैश्विक समस्याओं का हल करने और उन वैश्विक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपेक्षित मानकों, सिद्धांतों और नियमों के न्यूनतम स्वीकार्य ढांचे के रूप में समझा जा सकता है जिसकी बहुपक्षीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, राष्ट्रीय सरकारों, निजी क्षेत्र और सिविल सोसाइटी सहित विस्तृत संस्थागत ढांचे द्वारा इसकी परिपुष्टि की जा सकती है। इन उद्देश्यों में गरीबी का उन्मूलन झगड़े को खत्म करना, स्वास्थ्य और शिक्षा के न्यूनतम मानदंडों को प्राप्त करना, पर्यावरण का सतत् विकास, मानव अधिकारों की रक्षा करना और भूख की समस्या का समाधान करना शामिल है। सुशासन से आशय नेतृत्व, अन्य लोगों की चिंताओं के प्रति संवेदनशीलता और समानता, न्याय और निष्पक्षता के मूलभूत मानदंडों की रक्षा करने से है।

इस समस्या के आयाम और इस कार्य की जटिलता अपरिहार्य रूप से द्वन्द्व और चुनौतियां उत्पन्न करती हैं। मुझे इनमें से कुछ का उल्लेख करने की अनुमति दें।

हम जानते हैं कि खास तौर पर जबकि राष्ट्र-राज्यों की श्रेष्ठता समाप्त नहीं हुई है, उनके क्षेत्र और उनके नागरिकों पर उनका पूर्ण नियंत्रण राष्ट्र-

पारीय, बहुपक्षीय, वैश्विक और क्षेत्रीय संस्थाओं तथा तंत्रों में आंशिक रूप से अंतरित हो गया है। यह शक्ति अंतरण अभी तक एक प्रगतिशील कार्य है जिसे यूरोपीय संघ के अनुभव को उदाहरण देकर समझाया जा सकता है।

दूसरे, वैश्विक और राष्ट्रीय स्तरों पर शासन को निर्देशात्मक मानदंडों और व्यावहारिक राजनीति के बीच एक विकल्प की पुरानी दुविधा पेश आती है। राष्ट्र-राज्य की अतिराष्ट्रीयता संकल्पना की अस्वीकार्यता को एक असमान वैश्विक व्यवस्था की इसी प्रकार अस्वीकार्यता के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होना चाहिए। उत्तरवर्ती स्थिति, वैश्विक राजनीतिक और वित्तीय संस्थाओं की संस्थागत अपर्याप्तता में सबसे ज्यादा स्पष्ट है। वैश्विक शासन के लिए एक स्थायी तर्क डेविड हेल्ड की इस टिप्पणी को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि 'वैध शक्ति का सिद्धांत निश्चित रूप से लोकतंत्र का ऐसा सिद्धांत है जो विश्व प्रणाली की आपस में जुडी प्रक्रियाओं व संरचनाओं से बंधा है। यह वैश्विक व्यवस्था में लोकतांत्रिक राज्य का सिद्धांत है और लोकतांत्रिक राज्य पर वैश्विक व्यवस्था के प्रभाव का सिद्धांत है'।

ध्यान देने योग्य तीसरी वास्तविकता समकालीन विश्व व्यवस्था की विशेषता बताने वाली निरंतर परिवर्तनशील स्थिति है। गत दो दशक द्विध्रुवीय व्यवस्था के एकध्रुवीय व्यवस्था और फिर बहुध्रुवीय व्यवस्था में समर्पण के साक्षी रहे हैं। संबंध और पहचान अब विशिष्ट नहीं रह गए हैं, और परस्पर व्याप्त बहुलता एक विकल्प की बजाय एक आवश्यकता बन गई है। इसके साथ-साथ भूमंडलीकरण और एकरूपता ने लोगों और राष्ट्रों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर गहरा प्रभाव डाला है। लोग आपस में कैसे जुड़े हुए हैं और उनकी संस्कृति एवं सभ्यता के सारभूत मूल्यों (तत्वों) की अभिव्यक्ति आज

और अधिक कठिन हो गई है। खासकर यह बहुजातीय, बहुभाषी और बहुधार्मिक राज्यों अथवा राज्य-समूहों में और अधिक मुश्किल है जब राष्ट्रीय पहचान का व्यापक ढांचा तैयार करने में पिछले समन्वयवादी सूत्रों की पहचान करना महत्वपूर्ण हो गया है।

चौथा मुद्दा यह है, और जो एक सामान्य व्यक्ति को ज्ञात नहीं है और सूक्ष्म तथ्यों के अंतर्गत यह वर्णित भी नहीं है, कि वैश्विक शासन के पृथक तत्व अधिकारों, लोकतंत्र, वैधता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से संबंधित वैश्विक चर्चा के विकसित होते जाने के साथ-साथ संधि-आधारित वैश्विक एवं बहुपक्षीय संगठनों तथा राष्ट्रीय सरकारों को एकजुट कर रहे हैं। राष्ट्रीय सरकार, लोक, कॉरपोरेट इकाइयां और सिविल सोसायटी, जिनके मूल्य एकसमान हो भी सकते हैं अथवा नहीं, साझा लक्ष्यों को हासिल करने के लिए राष्ट्रपारीय नेटवर्क के निर्माण में सहयोग कर रहे हैं। इनमें से कुछ पुराने, सुदृढ़ और निष्पक्ष गठबंधन हैं, जबकि अन्य हाल में निर्मित पृथक समूह हैं जो सीमित विषयों पर कार्यरत हैं। इस प्रक्रिया के भावी विकास का परिणाम हम सभी के लिए महत्वपूर्ण होगा।

देवियो और सज्जनो,

विचारों और उपायों के संगम के बावजूद विभिन्न समाजों का अनुभव सुधारों के लिए महत्व रखता है। इसी संदर्भ में मैं अपने देश के बारे में बोलना चाहता हूँ। भारत की आबादी पूरे विश्व की आबादी का छठा हिस्सा है, यहां एक जीवंत लोकतंत्र कायम है और विश्व की विविधताओं को प्रतिबिम्बित करने वाले एक छोटे-मोटे जगत की तरह है। इसे 'विश्व का सबसे बड़ा बहुसांस्कृतिक समाज' ठीक ही कहा गया है।

मैं आपके विचारार्थ अपने अनुभव के तीन पहलुओं पर प्रकाश डालना चाहता हूं।

पहला, और सबसे महत्वपूर्ण है विविधता और विविध अस्मिताओं का समायोजन। हम सौभाग्य से अपनी सभ्यता और विरासत तथा समन्वय की हमारी स्वाभाविक क्षमता के कारण इसे कार्यान्वित करने में सफल रहे हैं। एक प्रसिद्ध विद्धान के शब्दों में 'भारतीय संविधान न केवल विविधताओं को पहचानने, बल्कि औपचारिक लोकतांत्रिक संरचनाओं में समूहों के प्रतिनिधित्व के लिए व्यवस्था करने में भी अपने समय से आगे था।' आठ व्यापक श्रेणियों- जाति, वर्ग, जनजाति, पिछड़ेपन, धर्म, क्षेत्र, लिंग और भाषा संबंधी गारंटी अथवा सकारात्मक कार्रवाई के लिए विशेष उपबंध एक अर्ध-संघीय संरचना के दायरे के भीतर सामासिक संस्कृति में न्याय हासिल करने और सांस्कृतिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने संबंधी इस दृष्टिकोण का सबूत है। इस प्रकार विविधता के समावेशन को भारतीय गणराज्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में सोच समझकर शामिल किया गया है। इसका आशय यह है कि किसी भारतीय की मानकीकृत छवि नहीं बनाई जा सकती।

दूसरे, त्वरित आर्थिक और मानव विकास से पहचान और एकीकरण के नए मुद्दे उत्पन्न हुए हैं। वैश्वीकरण के युग में अलग-थलग रहना विकल्प नहीं हो सकता है; बल्कि, साथ-साथ रहने के कई तरीके हैं। एकीकरण आवश्यक और वांछनीय है; समावेशन न तो वांछनीय है और न ही व्यावहारिक है। हमारे पूरे इतिहास में हमने उन समावेशनों और अपवर्जनों की श्रृंखलाओं पर निर्मित हो रही पहचानों को देखा है जो जमीनी हकीकतों को परिलक्षित

करती हैं। विगत की भांति, भविष्य में हमारे लिए समावेशनों के पक्ष में संतुलन बरकरार रखने की चुनौती रहेगी।

तीसरे, यह कहा गया है कि "सामाजिक संघर्ष भारत के विचार में निहित है" और ऐसे संघर्ष के कुछ आयामों में जातिगत अन्याय, धार्मिक मतभेद, आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय क्षरण तथा संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा, आतंरिक पलायन, राजनीतिक अधिकार और मान्यता संघीय ढांचे से उत्पन्न होने वाले मुद्दे तथा ग्रामीण-शहरी आबादी वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के प्रतिस्पर्धी दावे और राष्ट्रवाद के संबंध में विरोधी अवधारणाएं शामिल हैं। हमारी राजव्यवस्था की लोकतांत्रिक प्रयासों के माध्यम से निरन्तर यह कोशिश रही है कि सामाजिक संघर्ष का समाधान समायोजन और सुशासन के जरिए किया जाए और एक ऐसे भारत के स्वप्न को साकार किया जाए जो अधिक समृद्ध, अधिक समावेशी, अधिक समन्वयवादी और जटिल सामाजिक मुद्दों का समाधान करने की अपनी क्षमता को लेकर अधिक आश्वस्त हो।

बहुल संस्कृतिवाद के प्रति भारतीय दृष्टिकोण 'नागरिकता के ऐसे रूप की आकांक्षा करना है जिसमें न तो पूर्ण समांगीकरण द्वारा सृजित सार्वभौमवाद हो और न ही स्वयं-सदृश और अवरुद्ध समुदायों की विशिष्टता हो।'

देवियो और सज्जनो,

मूलभूत स्तर पर, वैश्विक शासन पर राष्ट्रों के शासन की गुणवत्ता का गहरा प्रभाव पड़ता है। मैं यह टिप्पणी करते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा कि हमारे दोनों देशों का यह सौभाग्य है कि इनको गतिशील

लोकतांत्रिक राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का वरदान प्राप्त हुआ है। हमारे लोग और नेतागण सभी के लिए शांति, स्वतंत्रता और न्याय के प्रति प्रतिबद्ध हैं। हमारे पारस्परिक सहयोग और विभिन्न क्षेत्रीय तथा वैश्विक समूहों में हमारी भूमिका से इस सदी में वैश्विक शासन की रूप रेखा को बेहतर बनाने में पर्याप्त रूप से सहायता मिलेगी।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में वैश्विक शासन पर कोई भी चर्चा विश्व के समक्ष मौजूद 'हाइड्रा-हेडिड क्राइसिस' कहे जाने वाले संकट पर ध्यान दिए बगैर पूरी नहीं होगी। वस्तुतः यह संदर्भ उन अतिव्यापी, यहां तक कि अन्र्तसम्बद्ध आर्थिक और वित्तीय, सुरक्षा तथा पर्यावरण संबंधी खतरों से है, जो पिछले वर्ष और इसके करीब समय में बहुत तेजी से उभरे हैं। ये आपस में जुड़े हुए हैं और इससे वैश्विक मंच पर प्रतिभागियों की क्षमता प्रभावित होती है। इसका राष्ट्रीय और वैश्विक शासन पर भी प्रभाव पड़ता है और इससे राष्ट्रीय शासन की सीमाएं और मौजूदा वैश्विक तंत्रों की अपूर्णता प्रदर्शित होती है।

अनुभव यह कहता है कि वैश्विक शासन की संस्थाओं को पुनर्संरचित किए जाने की अनिवार्य आवश्यकता है ताकि इन्हें ज्यादा प्रतिनिधिक, ज्यादा प्रभावकारी और वर्ग विशेष की बजाय आम भलाई के प्रति ज्यादा समर्पित बनाया जा सके।

मैं प्राग सिक्युरिटी स्टडीज इंस्टीटच्यूट के निदेशक श्री ओल्डरिच सरनी और उप विदेश मंत्री श्री हायनेक मोनीसेक का उनके उद्‌गारों के लिए धन्यवाद करता हूं।